बोध की लक्ष्मण रेखा

डॉ. स्कन्द शुक्ल

बोध की लक्ष्मण रेखा

लेखक: डॉ. स्कन्द शुक्ल

निःशुल्क वितरण हेतु ई-बुक: 2019

सभी चित्र इंटरनेट से साभार

लेखक

डॉ. स्कन्द शुक्ल

22 सितम्बर 1979 को राजापुर, बान्दा में जन्म. वर्तमान में लखनऊ में गठिया-रोग विशेषज्ञ के रूप में कार्यरत. वृत्ति से चिकित्सक होने के कारण लोकक-ष्ट और उसके निवारण से सहज जुड़ाव. साहित्य के प्रति गहन अनुराग आरम्भ से. अनेक कविताएँ-पत्र-कहानियाँ विभिन्न पत्रकिाओं में प्रकाशित. साथ ही दो उपन्यास 'परमारथ के कारने' और 'अधूरी औरत' भी. सामाजिक मीडिया पर भी अनेकानेक विज्ञान-समाज-स्वास्थ्य- जानकारियों के माध्यम से-सम्बन्धी लेखोंवैज्ञानिक चेतना के प्रचार-प्रसार में सक्रिय.

जब धर्मग्रन्थ कहते हैं कि आने वाले समय में पाप बढ़ जाएगा, तो उनका इशारा दरअसल बढ़ती वैयक्तिकता की ओर होता है।

मनुष्य पूरा जीवन दो छोरों के बीचे झूलता हुआ काट देता है: एक छोर पर उसकी वैयक्तिकता होती है, दूसरे पर सामाजिकता। एक सिरे पर वह अपनी निजताओं को पकड़े होता है, तो दूसरे पर अपने सामाजिक दायित्वों को। इन्हीं के बीच झूलना ही दरअसल धर्म-अधर्म के बीच या पाप-पुण्य के बीच का झुलाव है।

संसार के सारे धर्म पुरानी सामाजिक कार्यप्रणालियों की नियमावलियाँ हैं। उन्हें अलग-अलग स्थानीय नेताओं ने अलग-अलग समय पर बनाया ताकि उस समय का समाज संचालित किया जा सके। धर्मों ने एक हद तक अपना क़ायदा निभाया भी। नियम बनाने वाले सिरमौरों को उनसे लाभ मिला और नियम मानने वाले अनुशासित भी रहे। इस तरह से चाहे-अनचाहे समाज के एक सन्तुलन, एक नियमन, एक हार्मनी (कुछ समय के लिए ही सही किन्तु) अपनी कमियों के साथ बनी रही।

लेकिन मनुष्य परिवर्तनशील प्राणी भी है। वह खोज करता जीता है, जीकर खोज करता जाता है। खोजना-जीना, जीना-खोजना करते रहने से वह बदलता भी है। हाँ, यह सच है कि खोजने का साहस कुछ ही लोग जुटा पाते हैं। अन्य ढेर सारे इन खोजने वालों को आगाह करते हैं, उन्हें मना करते हैं। किन्तु कुतूहल कहाँ परम्परा की सुनता है! सो खोज होती है, नये अनुभव मिलते हैं। इन नये अनुभवों को न-नुकुर के बाद ढेर सारे मना करने वाले भी स्वीकार कर लेते हैं। झेंपते हैं, सकुचाते हैं, संकोच से फिर कहते हैं, "तुम सही थे यार! हम ही तुम्हें समझ नहीं पाये! या यों कहें कि तुम-जितना साहस नहीं कर पाए!"

भौतिक खोजें सामाजिक लाभों के लिए की जाती हैं और की भी जानी चाहिए। विज्ञान इसलिए आयफोन नहीं बना रहा है कि मैं उसे खरीदूँ और परिवार-समाज को मध्यमा उँगली दिखाता अपनी निजता में लीन हो जाऊँ। लेकिन होता बहुधा यही है। भौतिक इच्छाओं की पूर्ति निजता को सामाजिकता पर तरजीह देने को कहती है। वह व्यक्ति को समझाती है कि अपने लिए जियो। पहले स्वार्थसिद्धि करो, फिर दुनिया का परमार्थ सोचना। अन्यथा परमार्थ करते-करते मर-खप जाओगे और तुम्हारी निजताएँ प्यासी रह जाएँगी।

व्यक्तिगत होने के विकासवादी लाभ हैं, डार्विन बाबा ऐसा बताते हैं। सच भी है। जीवन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' बाद में हुआ, पहले उसने दूसरों की जय से पूर्व अपनी जय की। अपने जीवन, अपने विकास, अपने लाभ, अपने सुख से पहले दूसरे के जीवन-विकास-लाभ-सुख को रखकर सोचना पहली नज़र में अडार्विनी जान पड़ता है। अगर सामने वाले को हमने स्वयं पर तरजीह दे दी, तो क्या यह विकासवाद का उल्लंघन नहीं हुआ?

लेकिन फिर परमार्थ उतना परमार्थी नहीं है, ध्यान से सोचने पर यह स्पष्ट हो जाता है। वह स्वार्थ ही का दूसरा चेहरा है, जिसमें व्यक्ति इन्वेस्टमेंट दूसरे ढंग से करता है। वह निजता को सामाजिकता के लिए किसी बड़े हित-हेतु क़ुर्बान कर देता है। यह क़ुर्बानी बहुधा बेकार नहीं जाती। इससे अनेक बड़े लाभ मिलते हैं, जिनसे जीवन-विकास-लाभ-सुख सब कुछ फिर से दूसरे रास्ते से प्राप्त होता है। यानी परमार्थ वह स्वार्थ है, जिसमें आप नाक को बाँह घुमा कर पकड़ लेते हैं! चाहे आप इसे जानें-मानें अथवा नहीं!

विज्ञान से दो बातें निकली हैं। भौतिकता का प्रबोध और उसका प्रभोग। प्रबोध पाकर आप बेहतर इंसान बन सकते हैं। जानने से आप अपनी व अन्य की ढेरों समस्याएँ हल कर सकते हैं। प्रबोध आपको समाज से एकदम नहीं काटता, जोड़े रखता है। लेकिन प्रभोग में आप जनता से कटने लगते हैं। आप केवल 'स्व' के लिए जीने लगते हैं। माय लाइफ़, माय रुल्ज़! टु हेल विद अदर्स!

अब कोई प्रबोध से प्रभोग की ओर ही जाएगा, यह कैसे तय हो? विज्ञान पढ़ेंगे और सादे रहेंगे, यह कैसे डिसाइड किया जाए?

इसी कारण ढेरों पुराने लोग यह भी जोड़ देते हैं कि बहुत न जानो। जानोगे तो सुख चाहोगे। यह सुख पहले प्रबोध का सुख होगा फिर इसमें प्रभोग आकर जुड़ जाएगा। प्रबोध को प्रभोग से जुड़ने को हम रोक नहीं सकेंगे। एक सीमा तक, अवश्य यह कर सकते हैं। लेकिन उसके बाद प्रभोग सामान्य जीवन बनकर लोगों से इस क़दर जुड़ जाएगा कि उससे न जुड़ने वाले कुछ पर भी उसका भारी दबाव पड़ेगा। पीयर प्रेशर! ऐसे में प्रबोधी विज्ञानजीवी कितने दिन प्रभोगी विज्ञान-उपभोक्ताओं की भीड़ में सुरक्षित रह सकेंगे!

संसार का हर धर्म व्यक्ति से ऊपर समष्टि को और इकाई से ऊपर सम्पूर्ण संरचना को रखता है। यही धर्मों की सबसे बड़ी यूएसपी है। विज्ञान इससे उलटा करता है। इस कारण उससे जन्मने वाली भौतिकता से प्रबोध और फिर प्रभोग पैदा होते हैं। उपभोक्ता हुआ जाता व्यक्ति लगातार अपने और केवल अपने बारे में सोचता जाता है। वह परम आत्मकेन्द्री वैयक्तिक व्यक्ति उन गुणों (दुर्गुणों से) युक्त हो जाता है, जो उसे तात्कालिक लाभ तो देते हैं किन्तु दीर्घकालिक हानियाँ भी जीवन में लाते हैं। इन्हीं आत्मकेन्द्री वैयक्तिक तात्कालिक लाभों को धर्म की भाषा में पाप कहा गया है।

काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार जैसे वर्णित-व्याख्यायित भारतीय दुर्गुण हों या ग्रीड (लोभ)-एन्वी (ईर्ष्या)-राथ (अतिशय क्रोध)-ग्लटनी (पेटूपना)-लस्ट (कामुकता)-स्लॉथ (आलस्य) जैसे ईसाई दुर्विकार, सबके मूल में आत्मकेन्द्रीयता खोजने पर आसानी से मिल जाती है। इन विकारों से युक्त व्यक्ति केवल अपने बारे में अथवा पहले अपने बारे में सोचता है। वह स्वयं को समूह के ऊपर रखता है। वह समूह के लिए कुछ नहीं करना चाहता। ऐसा करने पर उसे तात्कालिक सुख भी मिलते हैं। इन सुखों की प्राप्ति उसे अपने समूह से और काटती है। सुख से वह असामूहिक होता है, असामूहिक होकर और सुख लेता है। इस तरह एक चक्र में फँसा वह व्यक्ति तब ठिठकता है, जब यह क्रम किसी दुःख के कारण भंग होता है। तब वह पलटता है और स्वार्थवश समूह की ओर देखता है। किन्तु वह समूह से इतना दूर आ चुका है कि अब समूह उसके काम आये, तो भला क्यों आये?

दिलचस्प बात यह है कि यह सब जानते हुए भी, समझने के बाद भी, हम अनेक काम जब करते हैं तो तात्कालिक स्वार्थों की ओर स्खलित हो जाते हैं। ऐसा पहले भी होता था। धार्मिक कथाओं में इनके ज़िक्र जब-तब आते हैं। किन्तु वे अपवाद जब नित्यता के रूप में स्वीकार्य हो चलें, तब समाज बिखराव की ओर बढ़ने लगता है। नतीजन समाज के पेड़ से असमय गिरा व्यक्ति-फल नये वृक्ष की निर्मिति नहीं करता, वह मिट्टी में पड़े-पड़े अवसाद में सड़ जाता है। बिना पके सीधे सड़ जाना फलस्वरूप मनुष्य की आधुनिक नियति बन चुकी है।
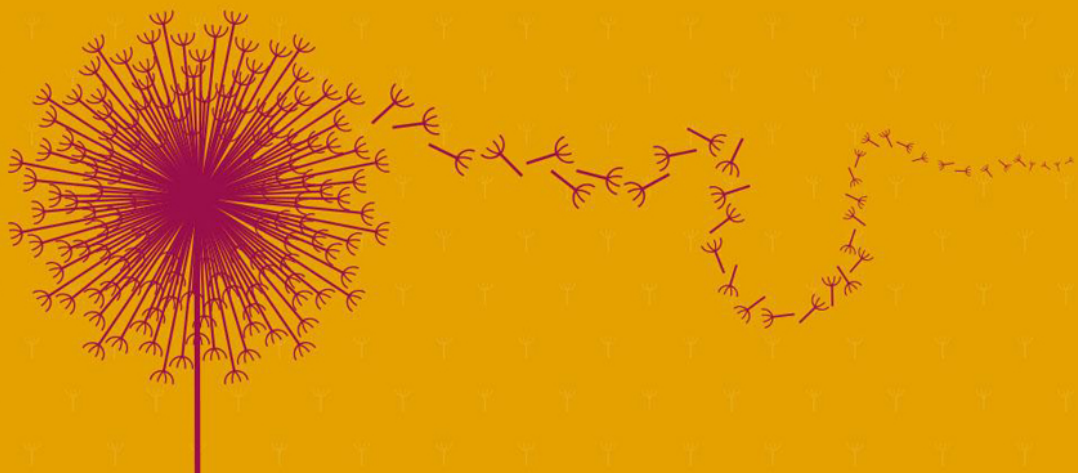
हाल ही में सत्तानवे वर्ष के वैज्ञानिक जॉन बी. गुडइनफ को रसायन-विज्ञान का नोबेल पुरस्कार लीथियम बैटरियों के आविष्कार में योगदान के लिए दिया गया। उनका इंटरव्यू सुन रहा था। अन्त में वे बात कहते हैं: "विज्ञान नैतिक उदासीनता रखता है।" इसकी खोजें नैतिक रूप से न राम के पक्ष में खड़ी होती हैं, न रावण के पक्ष में। विज्ञान वह ब्रह्मास्त्र देता है जिसे अच्छे-बुरे दोनों, चला सकते हैं। ऐसे में एथिक्स और मॉरल्स को दरकिनार करके विज्ञान-निर्मित ब्रह्मास्त्र चलाने की तमीज लेकिन सिखाएगा कौन? हुनर और तमीज़ एक तो होते नहीं!

हुनरमन्द को तमीज़दार कैसे बनाया जाए? या फिर हुनरमन्द और तमीज़दार में किसी एक को चुनना हो, तो किसे चुना जाए? ज़ाहिर है ढेरों तमीज़दार को चुनेंगे। हुनर हिंसा कर सकता है, तमीज़ सब्र जानती है।

विज्ञान के प्रसार के समय मास्टरजी प्रबोध और प्रभोग के बीच लड़कों को हाथ पकड़ कर उनका अन्तर नहीं समझाते। वे विश्वामित्र नहीं हैं कि राम-लक्ष्मण को बताएँ कि बला-अतिबला विद्याओं का प्रयोग कब करना है और कब बिलकुल नहीं करना है।